# Chapter-2

## --द्वितीय परिच्छेद--

वैयाकरणों तथा काव्य शास्त्रियों की भाषा विषयक अवधारणा एवं शब्दार्थ चिन्तन :

भाषा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के भाष् धातु से मानी जाती है। जिसका अर्थ है व्यक्त वाणी में कुछ कहना अर्थात् अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त ध्वनि संकेतों द्वारा दूसरे तक सम्प्रेषित करना। `व्यक्तायां वाचि` का उल्लेख करते हुए महर्षि पाणिनि ने `वद्` के अर्थ में ही भाष् धातु को माना है। `भाष्` +टाप् = भाषा। पाणिनि के अनुसार `आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को समझकर मन को बोलने की इच्छा से प्रेरित करती है, और प्रेरित वायु(श्वास वायु) फेफड़े में चलती हुई कोमल ध्वनि को उत्पन्न करती है, फिर बाहर की ओर जाकर और मुख के उपरिभाग से अवरुद्ध होकर वह वायु मुख में पहुंचती है और पंचधा विभक्त ध्वनियों को उत्पन्न करती है।[१]

प्रबन्ध विस्तार के भय से भाषा के दार्शनिक, व्याकरणिक एवं भाषा वैज्ञानिक पक्ष को अधिक विस्तृत करना समीचीन नहीं प्रतीत होता, परन्तु विषयगत नवीनता को ध्यान में रखते हुए इतना जान लेना आवश्यक है कि आखिर भाषा है क्या ? वैयाकरणों एवं काव्य शास्त्रियों ने उसे किस रूप में जाना पहचाना था ? अमरकोष में ब्राह्मी, भारती, भाषा, गी, वाक् (वाच्) वाणी (वाणि) सरस्वती, व्यहार, उक्ति, लापित, भाषित, वचन, वच् को भाषा का पर्याय बताया गया है।[२] दर्शन अथवा विज्ञान की

भाषा में किसी शब्द विशेष का एक निर्धारित एवं मान्य अर्थ होता है। प्रयोक्ता, पाठक अथवा श्रोता उन पारिभाषिक शब्दों के अभिप्राय के सम्बंध में एक मत होते हैं। इसलिए उसके अर्थग्रहण में कठिनाई नहीं होती। परन्तु काव्य एवं साहित्य में प्रयुक्त शब्दों के अर्थों में कहीं संकुचन और कहीं विस्तरण दीख पड़ता है। वहां अर्थ वैभिन्य की संभावना रहती है।

वेदों और उपनिषदों में वाक् तत्व का प्रचुर उल्लेख मिलता है, जिसको आत्म तत्व, ब्रह्मतत्व आदि रूपों में भी वर्णित किया गया है, तथा मेधा, मनीषा आदि के द्वारा प्रतिभा का अभिप्राय स्पष्ट किया गया है। वाक् शब्द में मयट् प्रत्यय जोड़ने से वाँ०गमय बनता है, यह शब्द संस्कृत में स्त्रीलिंग है जिसका अर्थ सरस्वती, वाणी या भाषा भी होता है। मनुस्मृति में वाक् का मधुर एवं श्लक्ष्ण होना आवश्यक माना गया है।[3] भाषा की आवश्यकता एवं महत्ता तथा शुद्धता के विषय में सर्वाधिक कवित्व पूर्ण उक्ति दण्डी की है। उनके अनुसार जगत में जो लोक-व्यवहार चल रहा है यह सब वाणी का ही प्रसाद है, यदि शब्द रूपी ज्योति न होती तो संपूर्ण जगत अंधकार मय हो जाता, विशुद्ध वाणी साक्षात् कामधेनु है।[4] अमृत और मर्त्य अर्थात् देव और मनुष्य, अक्षर और क्षर, नित्य और अनित्य सभी वाक् तत्व से ही उत्पन्न हुए हैं।[5] वाक् तत्व को पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, रावण, भर्तृहरि आदि महा वैयाकरणों ने शब्द, शब्द तत्व, शब्द ब्रह्म आदि नामों से अभिहित किया है। और इसी को सृष्टि का कारण तथा आधार बताया है।[6] आगे चलकर इसी को स्फोट की संज्ञा भी दी गयी। स्फोट शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है जिससे अर्थ की प्रतीति हो- ~~स्फुटं~~--- स्फुटति अर्थ: यस्मात् स स्फोट:। 'स्फोट' शब्द की व्युत्पत्ति तुदादिगण की स्फुट विकसने धातु से संज्ञा अर्थ में घञ् प्रत्यय के योग से हुई है जिसका अर्थ

है खिलना, फूटना तथा प्रस्फुटित होना। शब्द से अर्थ के प्रस्फुटित होने के लिए वैयाकरणों ने जिस सिद्धान्त को अपनाया उसे स्फोट सिद्धान्त की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी ध्वनि या नाद के श्रवण से मानस-पटल पर जो एक बिम्ब कौंध जाता है, अथवा शब्द श्रवण से जो विचार प्रस्फुटित होता है उसे स्फोट की संज्ञा दी जाती है यही ध्वनि का भी विषय है।[७] भर्तृहरि ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि ध्वनि के द्वारा शब्द की अभिव्यक्ति होती है अतएव स्फोट व्यंग्य है और ध्वनि व्यंजक।[८] डा० रविशंकर नागर का कहना है कि-`भाषा स्वरूप के अध्ययन तथा शब्द की अर्थ बोधिका शक्ति के बीज मीमांसा, न्याय, व्याकरण तथा काव्यशास्त्र में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। व्याकरण के स्फोट, मीमांसा दर्शन में अभिहितान्वय वाद तथा अन्विताभिधानवाद न्याय शास्त्र में लक्षणा तथा काव्यशास्त्र में व्यंजना के विचार के रूप में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास किया गया है।[९]

डा० बाबूराम सक्सेना का कहना है कि-`ध्वनियों का विश्लेषण सर्वप्रथम वैयाकरणों ने किया। श्रुति के अनुसार इन्द्र ने वाणी को दो हिस्सों में विभक्त किया था। भाषा के विश्लेषण का यह प्रथम उल्लेख है।`[१०] आचार्य किशोरीदास वाजपेयी इसी बात को पूर्णतय: स्पष्ट करते हुए लिखते है `तात्पर्य यह है कि पहले इस भाषा का कोई व्याकरण न था, प्रकृति, प्रत्यय आदि का विभाग विवेचन न था। तब देवों ने इन्द्र से प्रार्थना की कि आप हमारी इस भाषा का व्याकरण बना दें। इन्द्र ने तब इस भाषा को बीच से तोड़कर प्रकृति, प्रत्यय, पद आदि के रूप में टुकड़े करके व्याकरण बना

दिया । तब से यह भाषा व्याकृत हुई ।[११] वैयाकरणों ने वर्ण और पद से आगे वाक्य की सत्ता सिद्ध की है तथा वर्ण स्फोट और पद स्फोट से आगे अन्तिम सत्य वाक्य स्फोट को माना है । वाक्य शब्द वैदिक वाक् (वाणी) का ही अपभ्रंश रूप है । डा० सत्यदेव चौधरी के अनुसार, 'भाषा वाक्य का अपर नाम है । वाक्य का तात्पर्य पदों का समुच्चय । ये पद सार्थक तथा वक्ता के अभिप्रेत को प्रकट करने में सक्षम तो हो ही, साथ ही वाक्य में साकांक्षा हो और उनके प्रयोग में सन्निधि हो ।[१२] वैयाकरणों ने वाक्य के विषय में विद्यमान समस्त मतों का संग्रह करके उनको आठ भागों में विभक्त किया है । भर्तृहरि ने समस्त ग्रन्थों के आधार पर शब्दार्थ तत्व का तुलनात्मक विवेचन किया है । मीमांसा, न्याय, आदि वैदिक दर्शनों तथा बौद्ध जैन आदि अवैदिक दर्शनों का स्थल-स्थल पर निर्देश भी किया है । इनके अनुसार 'शब्द ब्रह्म हैं, आदि, अन्त से रहित हैं, अक्षर है, उसका ही अर्थ रूप में विवर्त होता है ।[१३] इस प्रकार शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो स्वरूप हैं ।[१४] भर्तृहरि ने शब्दार्थ सम्बंध को स्पष्ट करते हुए यह भी कहा है कि शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक भाव सम्बंध नहीं है अपितु प्रकाश्य-प्रकाशक भाव अथवा कार्य-कारण भाव सम्बंध है । शब्द प्रकाशक है और अर्थ प्रकाश्य, शब्द कारण है और अर्थ कार्य ।[१५] इस प्रकार वैयाकरणों के मत से यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार का समस्त ज्ञान शब्द मूलक है । संसार की समस्त विधाएं, शिल्पशास्त्र एवं समस्त कलाएं शब्द-शक्ति से सम्बद्ध है । शब्द ही वह शक्ति है जिसके द्वारा उत्पन्न हुई समस्त वस्तुओं का विवेचन और विभाजन किया जाता है । शब्द और अर्थ के सम्बंध से ही प्रत्येक शब्द अपना अर्थ प्रेषित करने में सक्षम होता है । यही शब्दार्थ सम्बंध है शब्द की शक्ति है ।

साहित्य शास्त्रियों ने स्फोट, वाक् तत्व आदि नामों को न रखकर शक्ति या शब्द शक्ति से उक्त विवेचन को स्पष्ट किया है तथा वैयाकरणों के मत का अनुसरण करते हुए अभिधा और लक्षणा शक्ति से आगे व्यंजना शक्ति की महत्ता सिद्ध की है। व्यंजना शक्ति की सिद्धि के कारण ही शब्द व्यंजक होता है और अर्थ व्यंग्य। व्यंग्य अर्थ न पद पर स्थित होता है न पदार्थ पर उसकी अपनी अलग सत्ता होती है। इस प्रकार वाक् तत्व, स्फोट तथा शब्द शक्तियों के माध्यम से वैयाकरणों और काव्य शास्त्रियों ने भाषा के मर्म को पकड़ने का पूरा प्रयास किया था। डा० रवि शंकर नागर के मतानुसार-'निरुक्तकार यास्क, महाभाष्यकार पतंजलि, वाक्य प्रदीपकार भर्तृहरि, ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन भाषा के मर्म को पकड़ने वाले आचार्य हैं। और इनकी सूक्ष्म गवेषणाएं परवर्ती आचार्यों के लिए प्रेरणा स्तम्भ रही हैं। जिससे शब्द शक्ति, भाषा के अध्ययन तथा ~~विश्ले~~ विश्लेषण का मार्ग भविष्य में प्रस्तुत हुआ है।'[१६]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्फोट, ध्वनि, वाक्य, वाच्य, वाच्, वाक्, वाणी, व्यंग्य आदि के द्वारा वैयाकरणों एवं साहित्य शास्त्रियों ने भाषा के ही तथ्य पर विचार किया है। काव्यशास्त्र के सभी तत्व व्याकरण के ही उपादान हैं और व्याकरण शास्त्र भाषाशास्त्र का ही विषय रहा है। व्याकरण भाषा को एक निश्चित दायरे में बांधने का प्रयास करता है।

## काव्यशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदायों में भाषा चिन्तन :

भारतीय काव्य शास्त्र के कुछ सम्प्रदाय ऐसे हैं जिन्हें निश्चित रूप से

काव्य का भाषिक आधार कहा जा सकता है । कविता में कवि द्वारा उत्पन्न किया गया चमत्कार शब्द और अर्थ के माध्यम से प्रकट होता है । संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने शब्द और उसके अर्थ से उत्पन्न काव्य चारुत्व को मूलाधार बनाकर काव्यगत तत्व का विवेचन किया है । जब शब्द और अर्थ निर्दोष होंगे तभी कविता में चारुता आयेगी । यदि अभिव्यक्ति का साधन भाषा ही दोषपूर्ण है तो कविता में चारुता अर्थात् चमत्कृति आ ही नहीं सकती । परन्तु केवल भाषा की शुद्धता के साथ ही भाषा में काव्यत्व नहीं आ जाता । भाषा की शुद्धता के साथ उसमें शोभा भी होनी चाहिए। यह शोभा ही भाषा को काव्य का जामा पहनाती है । प्राचीन आचार्यों ने इस शोभा का विवेचन अलंकार तथा गुणों के रूप में लिया, तथा अभिधा लक्षणा के रूप में मिली शब्द शक्ति की प्राचीन परम्परा से विसंवाद न रखते हुए अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया ।"[१७] भारतीय काव्यशास्त्र के अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्यादि शब्दार्थ चमत्कार के अन्तर्गत आते हैं जिनमें ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य भाषा का ही विषय है।

## अलंकार सम्प्रदाय :

अलंकार का सम्बंध अभिव्यक्ति अथवा काव्य भाषा से है । आचार्य वामन ने सौन्दर्यमलंकार: कहकर काव्यभाषा के इसी सौन्दर्य की ओर संकेत किया है ।[१८] भामह का मत है कि नितान्त शब्द अर्थ के गर्भ प्रयोगों पर सौन्दर्य की अभिव्यंजना नहीं की जा सकती इसके लिए आवश्यक है कि शब्द और अर्थ का सपाट या अभिधा के स्तर का प्रयोग न करके उसे वक्र या काव्योचित ढंग से रखा जाय ।[१९] कवियों की वाणी सपाट अभिधान होते हुए भी वक्र हो, यही शब्द अर्थ का वक्र प्रयोग वाणी को कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करने में

सक्षम होता है।[20] सरस्वती-कंठाभरण के टीकाकार रत्नेश्वर भाषा की वक्रता को ही अलंकार मानते हैं, उनके अनुसार अवक्र शब्द और अर्थ वचन या वार्ता है।[21] अप्पय दीक्षित के मतानुसार उपमा ही समस्त अलंकारों की प्रसूता है, काव्य रंग रूपी रंगमंच पर उपमारूपी नटी विविध प्रकार के हावों भावों से तथा उक्तिभंगी भेद से अनेकानेक अलंकारों का सृजन करती है।[22]

इस प्रकार विभिन्न आलंकारिकों के मत से यह सिद्ध हो जाता है कि उक्ति वैचित्र्य ही अलंकार है। इस प्रकार अनेकानेक अलंकारों के साथ उक्ति पद जुड़ा हुआ है जैसे व्याजोक्ति, अन्योक्ति, वक्रोक्ति आदि आचार्य शुक्ल भी काव्य भाषा के भिन्न-भिन्न विधान तथा कथन के ढंग में अलंकारों को स्वीकार करते हैं। कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। वस्तु या व्यापार की भावना को चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुंचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप-रंग या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रूप रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्म वाली और-और वस्तुओं को सामने लाना पड़ता है। इस तरह भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं।[23] इस प्रकार आचार्य शुक्ल अलंकार को भाषा की शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। 'अलंकार वस्तुतः भाषा की कुछ विशिष्ट क्षमताओं के ही रूप हैं। शब्दालंकार भाषा की बाह्य विशेषताओं पर आधारित है। जबकि अर्थालंकार उनकी आन्तरिक विशेषताओं पर'।[24] पाश्चात्य विद्वानों ने भी भाषा के आलंकारिक पक्ष पर बड़ी गहराई से विचार किया है। पाश्चात्य विचारक

कार्ल वेक्शन और आर्थर गंज का मत है कि सामान्य अर्थ में प्रभावशाली भाषण एवं लेखन के हेतु भाषा प्रयोग को शासित करने वाले सिद्धान्त के ह अलंकारशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं।[२५] पुटेन हम की दृष्टि में 'कविता श्रुतिमधुर रूप में लिखने और बोलने की कला है तथा अलंकारों का प्रयोग भाषा को मधुर बनाता है।'[२६] इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों की दृष्टि से अलंकार भाषा की सजावट के लिए ही नहीं, अपितु मानव मन की अनुभूतियों, भावनाओं तथा जीवन के विविध गूढ़ रहस्यों की अभिव्यक्ति सुचारु रूप से कर सके।

## रीति सम्प्रदाय :

रीति सिद्धान्त के प्रणेता आचार्य वामन ऐसी विशिष्ट कलात्मक भाषा को महत्व देते हैं जिसमें दस शब्द गुण और दस अर्थ गुण समाहित हैं।[२७] विदर्भ प्रदेश में माधुर्य व्यंजक वर्णों अर्थात् कोमल- अल्प प्राण ध्वनियों से युक्त ललित रचना का प्रचलन होने के कारण इसे वैदर्भी रीति कहा गया। राजशेखर ने इसे वाणी अथवा भाषा के विन्यास का क्रम कहा है।[२८] विश्वनाथ ने पदों के समुचित संगठन को रीति माना है।[२९] वामन का मत भी यही है। उनके अनुसार रीति ही काव्य की आत्मा है। जहां पर वैदर्भी रीति कोमल ध्वनियों से युक्त श्रुति मधुर होती है वहीं पर गौड़ी रीति महाप्राण, कठोर वर्णों एवं ध्वनियों से युक्त श्रुति मधुर होती है वहीं पर गौड़ी रीति महाप्राण, कठोर वर्णों एवं ध्वनियों से युक्त होती है। वामन ने भाषा के जिन माधुर्य व्यंजक वर्णों, तथा कोमल एवं कठोर ध्वनियों से युक्त पदों की रचना पर जोर डाला है वे वर्ण, पद, ध्वनि भाषा के ही अवयव हैं और इन्हीं अवयवों पर रीति सिद्धान्त की

आधार शिला निर्मित हुई है। भामह, दण्डी, वामन और भोज ने जिन शब्द और अर्थ गुणों का उल्लेख किया है उनमें से कतिपय गुण काव्य भाषा के सौन्दर्य पक्ष को उद्घाटित करते हैं। सुशब्दता, संक्षेप, गति, उक्ति, प्रौढ़ि आदि गुण भाषा के शब्द सौन्दर्य, अर्थान्तर से बढ़नेवाली गति, उक्ति वैचित्र्य, मित एवं स्फीत कथन तथा सफल भावों की अभिव्यक्ति के द्योतक हैं। खगेन्द्र का कहना है कि-'भारतीय आचार्यों ने कविता की व्यापकता को समझकर ही काव्य भाषा के तीन गुण माधुर्य ओज और प्रसाद निर्धारित किए थे। इससे भावों एवं अनुभूतियों की विविधता के अनुरूप शब्द विधान करने की बात सिद्ध होती है।[30] संवेदनात्मक भाषा में माधुर्य रहता है किन्तु चिंतन या दर्शन के संस्पर्श से कविता की भाषा में प्रसाद या ओज गुण का समावेश होता है।[31] इस प्रकार रीति और गुण काव्य भाषा के संरचनात्मक अवयव हैं जिन्हें भाषा से अलग नहीं किया जा सकता। दण्डी के अनुसार शब्द और अर्थ की समुचित योजना ही मार्ग अथवा रीति है। उनके अनुसार काव्य में भाषिक संरचना की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति पद्धति होती है और विभिन्न कवियों की अभिव्यक्ति पद्धति में परस्पर सूक्ष्म अन्तर होता है।[32]

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में रीति का विवेचन-विश्लेषण शैली के रूप में हुआ है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विचारक एबर क्राम्बी ने वामन की तरह शैली को आत्म तत्व घोषित करते हुए कहा है कि-'शैली किसी रचना की आत्मा एवं उसके रचयिता के व्यक्तित्व का प्रकटन है।[33] डेमेट्रियस का शैली प्रकार सरल, वर्णनात्मक, मसृण ओजपूर्ण रीति सिद्धान्त का ही

विषय है जो वामन के गुणों की ओर संकेत करता है। क्लियेन्थ ब्रुक्स और राबर्टपैन वारेन ने रीति की तरह शैली को भाषा के चयन और व्यवस्थित करने में आवश्यक माना है।[34] रीति तथा शैली भाषा का ही संरचनात्मक रूप है।

ध्वनि सम्प्रदाय :

ध्वनि सिद्धान्त का मूलाधार व्याकरण है। व्याकरण शास्त्र का स्फोट, वाकतत्व तथा अभिधा, लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द शक्तियां भाषा की ही शक्तियां हैं। भाषा में छिपी हुई अर्थ प्रत्यायन शक्ति तथा गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन में इन्हीं शब्द शक्तियों का सहारा लिया जाता है। ध्वनिकार द्वारा प्रतिपादित वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ भाषा के ही प्रकार हैं। अभिधा का अर्थ हुआ सीधी एवं सपाट भाषा, वामन ने उक्ति में वक्रता लाने के लिए अभिधा को नहीं लक्षणा को महत्वपूर्ण माना है।[35] वैयाकरणों तथा भाषाविदों के अनुसार ध्वनि भाषा की महत्वपूर्ण इकाई है। ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य मिलकर भाषा को पूर्णता प्रदान करते हैं। ध्वनिकार आनन्द वर्द्धन ने भाषा के सूक्ष्म- से सूक्ष्म अवयवों को लेकर ध्वनि सिद्धान्त ~~को~~ को एक व्यापक प्रतिष्ठा दी, उनके अनुसार ध्वनि का चमत्कार सुप्, तिङ्, वचन, कारक, कृत्, तद्धित, समास, उपसर्ग, निपात, काल, लिंग, रचना, अलंकार, वस्तु तथा प्रबंध आदि ~~व~~ में व्याप्त होता है।[36] इस प्रकार ध्वनिकार ने भाषा के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयव को लेकर व्यापक से व्यापक रूप का भी अन्तर्भाव कर सर्वाङ्ग पूर्ण [illegible] बनाने की चेष्टा की है। जिससे स्वत: सिद्ध हो जाता है कि ध्वनि सिद्धान्त काव्य भाषा का सिद्धान्त है जिसके सहारे काव्य भाषा के मर्म को टटोला जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों ने भी वाच्यार्थ से भिन्न सूक्ष्म अर्थ की चर्चा की है। रिचर्ड्स ने इसे 'इमोटिव मीनिंग', कानटेक्सटुअल मीनिंग, आदि द्वारा तो, लीविस, टिलियर्ड आदि ने 'आल्लीक मीनिंग' के द्वारा भाषा के व्यंजना व्यापार की ओर संकेत किया है। जिस प्रकार मम्मट ने वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, तात्पर्यार्थ तथा ध्वनिकार ने वाच्यार्थ, एवं प्रतीयमानार्थ का उल्लेख किया है ठीक उसी प्रकार रिचर्ड्स ने भी चार प्रकार के अर्थों का उल्लेख किया है - (१) सैन्स (२) फीलिंग (३) टोन (४) इन्टैन्शन, रिचर्ड्स के अनुसार द्विअर्थता से भाषा में अर्थ सम्बंधी लोच आता है यदि यह लोच न रहे तो उसकी सूक्ष्मता समाप्त हो जाती है।[३७] यद्यपि रिचर्ड्स और ध्वनिकार दोनों वाच्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ की सराहना करते हैं तथापि दोनों की भावभूमि में पर्याप्त अन्तर है। नयी आलोचना के समर्थकों ने भाषा के तनाव को लेकर जो चर्चा छेड़ी है वस्तुत: वह ध्वनि तत्व ही है।

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों ने ध्वनि तत्व को काव्य भाषा का प्रमुख तत्व माना है। जिस प्रकार नमक के बिना व्यंजन निरर्थक प्रतीत होता है उसी प्रकार व्यंग्य के बिना भाषा। डा० बच्चन सिंह के अनुसार, 'व्यग्य काव्य भाषा का सामान्य वैशिष्ट्य है तो विसंगति विशेष गुण।'[३८] इस प्रकार ध्वनि सिद्धान्त के विवेचन विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्वनि सिद्धान्त काव्यभाषा का ही सिद्धान्त है।

## वक्रोक्ति सम्प्रदाय :

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रणेता आचार्य कुंतक ने प्रसिद्ध अभिधान का अतिक्रमण करने वाली ऐसी विचित्र अभिधा अर्थात भाषा को वक्रोक्ति कहा है।

जो विदग्ध जनों अर्थात् क्रान्तदर्शी महाकवियों की भाषा है। कुंतक के अनुसार वक्रोक्ति सामान्य बोल-चाल से भिन्न वह भाषा है जो शास्त्रीय विवेचन की भाषा, लोकभाषा दोनों से भिन्न इतर अर्थात् कविता की भाषा है।[39] भोज के अनुसार 'शास्त्र भाषा तथा लोकभाषा अवक्र होती है परन्तु कविता की भाषा वक्र होती है।[40] इस प्रकार कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धान्त काव्यभाषा का सिद्धान्त है तथा वक्रोक्ति सिद्धान्त का भेदोपभेद विवेचन ध्वनि सिद्धान्त की तरह व्याकरण के आधार पर किया गया है। वक्रोक्ति सिद्धान्त भाषा के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों को लेकर भाषा की नयी-नयी भंगिमाओं का विवेचन करने वाला सिद्धान्त है। भारतीय एवं पाश्चात्य भाषा शास्त्रियों ने सामान्यत: भाषा के तीन तत्व माने हैं वर्ण, पद और वाक्य इसी के आधार पर कुंतक का वक्रोक्ति सिद्धान्त अवलम्बित है उनके अनुसार वक्रता के ६ प्रकार होते हैं - वर्ण विन्यास वक्रता, पद पूर्वार्द्ध वक्रता, पद परार्द्ध वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता, प्रबन्ध वक्रता। पद पूर्वार्द्ध वक्रता के अन्तर्गत रूढ़ि, पर्याय, उपचार, विशेषण, संवृति, वृत्ति, लिंग, क्रिया, प्रत्यय, भाव तथा पद परार्द्ध वक्रता के अन्तर्गत काल, कारक, उपसर्ग, निपात, संख्या, वचन, पुरुष, उपग्रह, धातु, पद तथा प्रत्यय आदि भाषिक उपादानों का विवेचन विश्लेषण किया गया है। इसके बाद क्रमश: वाक्य वक्रता का विवेचन किया है जिसके अन्तर्गत भाषा के वैचित्र्य रूप सभी अलंकारों को समाहित कर लिया गया है जो हजारों प्रकार के हो सकते हैं। वाक्य के बाद भाषिक संरचना का सबसे बड़ा घटक प्रकरण तथा प्रबंध है जो परस्पर सम्बद्ध अनेक वाक्यों के समुदाय से निर्मित होता है। इस प्रकार वक्रोक्ति सिद्धान्त काव्य भाषा का ही सिद्धान्त सिद्ध होता है।

## औचित्य सिद्धान्त :

आनन्दवर्द्धन और कुंतक की तरह क्षेमेन्द्र ने भी भाषा के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों को लेकर औचित्य सिद्धान्त की परिकल्पना की । जिस प्रकार वर्ण, पद, वाक्य, प्रबन्ध, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, तथा विशेषण को लेकर ध्वनि तथा वक्रोक्ति की अवधारणा हुई उसी प्रकार भाषा के औचित्य को लेकर क्षेमेन्द्र ने औचित्य सिद्धान्त की अवधारणा की ।[४१] परन्तु इन तीनों भाषिक सम्प्रदायों के मूल दृष्टिकोण में फर्क है । औचित्य सिद्धान्त भाषा के उचित संग्रथन की ओर अधिक संकेत देता है । इस प्रकार औचित्य काव्य भाषा की उज्ज्वल संपदा है ।

## पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विभिन्न वादों में भाषा चिन्तन :

(क) नव्यशास्त्रवाद(नियोक्लासिसिज्म)

फ्रांस के निकलस ब्वालों को नव्यशास्त्रवाद का प्रथम विचारक माना जाता है । सन् १६७३ ई० में प्रकाशित ब्वालो की पुस्तक `ल आर्त पोयतिक` ने पाश्चात्य आलोचना को पर्याप्त प्रभावित किया । ~~ब्लन~~ ब्वालो का कवियों के प्रति यह सन्देश था कि वह कल्पना से दूर रहकर भाषा के प्रति सावधान रहे ।[४२] क्लासिकल पोयट्री तभी बनेगी जब कवि भाषा के प्रति सजग रहेगा । क्लासिकल का अर्थ श्रेष्ठ और वैशिष्ट्य पूर्ण रचना से है । कला और साहित्य में जिसे क्लासिक गुण कहा जाता है उसका आकर्षण इस बात में निहित है कि अत्यन्त सुपरिचित कविता होने पर भी वह कुछ इस निपुणता से युक्त होती है कि हम उसे बार-बार सुनना चाहते हैं । एलेक्जेन्डर पोप ने भाषा की महत्ता को स्वीकार

करते हुए उसे इस तरह आंकने का प्रयास किया कि भाषा नर- नारी के शरीर पर वस्त्र की तरह है अत: अभिव्यक्ति विचार का वस्त्र है। नव्यशास्त्रवाद के कुछ विचारकों का यह मत था कि कविता का उद्देश्य शिक्षा देना है परन्तु ड्राइडन ने स्पष्ट रूप से तर्क करते हुए कहा कि कविता आनन्दानुभूति के सहारे ही शिक्षा दे सकती है और इस आनन्ददायकता का मुख्य आधार भाषा है। अभिव्यक्ति को मनोरंजक बनाने वाले तथ्यों में भाषा सर्वप्रधान है। नव्यशास्त्र वादियों ने इस प्रकार मजबूत भाषा के लिए शब्दों के प्रयोग पर बल दिया तथा भाषा को एक नयी दिशा दी। सेमुअल जान्सन का मत है कि-`सरल कविता वह है जिसमें भाषा पर जोर वब जबर्दस्ती किए बिना स्वाभाविक रूप से विचार किया जा सके।[४३] इस प्रकार नव्यशास्त्र वादियों ने भाषा की सरलता, सुबोधता तथा नवता पर बल दिया है।

## (ख) स्वच्छन्दतावाद :(रोमांटिसिज्म) :

स्वच्छन्दतावाद का प्रथम प्रयोग जर्मन आलोचक `फ्रेड्रिक श्लेगल` के द्वारा सन् १६६८ ई० में में किया गया। विंकल मैन, लैसिंग, शिलर और गैटे जर्मन के स्वच्छन्दतावादी पोषक हुए। जर्मनी से ही स्वच्छन्दतावाद इंग्लैण्ड और फ्रांस पहुंचा। इंग्लैण्ड में वर्ड्सवर्थ, कौलरिज, बायरन, शैली, कीट्स और लैहंट इसके प्रमुख उन्नायक हुए। ये सभी कवि के साथ- साथ कुशल विचारक भी थे। इसीलिए सिद्धान्त और व्यवहार से स्वच्छन्दता वाद का स्वरूप स्पष्ट किया है। वर्ड्सवर्थ मानता है कि कविता`प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है जो स्वभावानुरूप भावोच्छ्वास उत्पन्न करती हैं।[४४] वर्ड्सवर्थ के अनुसार अनुभूतियों का भाषा

में पुनरुत्थान ही कविता है । अर्थात् अनुभूतियों के सम्वाहन की क्षमता जिस भाषा में आ जाती है वह भाषा ही कविता है । प्राचीन कवियों के उदाहरण द्वारा वर्ड्सवर्थ ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि यदि कवि के हृदय में भावों का प्रबल उन्मेष है और विषय का उचित चयन हुआ है तो उसकी भाषा अनायास भव्य, सजीव और चित्र प्रधान होगी । प्राचीन कवियों की अनुभूति और भाव प्रबल थे इसलिए उनकी भाषा सहज ही प्रभावी और अलंकारों से युक्त हो गयी । अतः उन कवियों में जहां भी अलंकृत भाषा मिलती है वह सच्चे भावावेश से युक्त है । आगे चलकर कवियों ने उस भाषा का प्रभाव देखकर भावों से अनुप्राणित हुए बिना भी वही प्रभाव उत्पन्न करना चाहा । जिससे भाषा अलंकारों से बोझिल, आडम्बरपूर्ण एवं जटिल बन गयी । वर्ड्सवर्थ ने सामान्य बोलचाल की भाषा को ही कविता की भाषा के लिए उपयुक्त माना है क्योंकि उसमें सरलता, सच्चाई और भावों के सम्प्रेषण की शक्ति है । काव्य भाषा के सम्बंध में वर्ड्सवर्थ ने गद्य और पद्य में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं माना । उनके अनुसार छंद के अभाव में गद्य और पद्य हुआ करते हैं ।[४५] अभिव्यक्ति की क्षमता गद्य और पद्य में समान रूप से होती है । भाषा तो गद्य और पद्य एक ही है अन्तर सिर्फ छंद के कारण है । वाल्टर रैले ने स्वच्छन्दतावादी कवियों के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ये कवि भाषा के द्वारा प्रदत्त सभी साधनों, नयी-नयी वैज्ञानिक शब्दावलियों को अपनाते अथवा गढ़कर बनाते हैं । वे पुराने शब्दों को चमकाते तथा नये को जैसे तैसे मिलाते हैं : वे अपनी वाणी के यन्त्र पर अधिकार रखते हैं ।[४६] इस प्रकार इन कवियों ने भाव, भाषा तथा छंद पर

विशेष ध्यान दिया, जिसका प्रभाव छायावादी कवियों में देखा जा सकता है । इन कवियों का यथार्थ के प्रति कोई आकर्षण नहीं था, परन्तु संगीतात्मकता की ओर प्रबल आकर्षण था । कल्पना की बहुलता के कारण अस्पष्टता और धुंधलापन का मोह दृष्टिगोचर होता है ।

(ग) कलावाद :

कलावाद का जन्म फ्रान्स में हुआ व्हिसलर के द्वारा इंग्लैण्ड पहुंचा । आस्कर वाइल्ड, ए०सी० ब्रेडले, और वाल्टर पेटर इसके प्रसिद्ध विचारक हुए । आस्कर वाइल्ड का मत है कि कलाकार के लिए जीवन को समझने का एक मात्र तरीका अभिव्यक्ति है ।[४७] कविता के सन्दर्भ में अभिव्यक्ति का सम्बन्ध भाषा से ही है । अत: स्पष्ट है कि आस्कर वाइल्ड कला को भाषा की एक संरचना के रूप में देखता है । 'दि पिक्चर आव डोरियन ग्रे' की भूमिका में उसने स्वीकार किया है कि विचार और भाषा कला के उपकरण हैं ।[४८] यह बात सत्य भी है कि विचार के बिना कला की सृष्टि उसी प्रकार नहीं हो सकती, जिस प्रकार जल के बिना घड़े का निर्माण नहीं हो सकता । घड़े का निर्माण मिट्टी से होता है परन्तु जल के बिना घड़े का निर्माण नहीं हो सकता । अर्थात् कला भाषा का ही एक ढांचा है न कि विचार का । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कला अथवा कविता भाषा की एक संरचना है । वाल्टर पेटर और ए० सी० ब्रेडले भी प्रकारान्तर से कविता को भाषा की एक संरचना के रूप में देखते प्रतीत होते हैं । ब्रेडले का कहना है कि वास्तविक काव्य के अर्थ को उसके अपने शब्दों में ही व्यक्त किया जा सकता है । शब्दों में हेर-फेर करने से अर्थ में भी परिवर्तन आ जाता है ।[४९] वाल्टर पेटर के अनुसार 'असंख्य शब्दों के बीच

एक वस्तु के एक विचार को व्यक्त करने के लिए एक ही शब्द होता है।[५०]

(घ) प्रतीकवाद(सिम्बोलिज्म)

प्रतीकवाद का जन्म बादलेयर, वर्लेन, रिम्बो, मलार्मे और वैलेरी के नेतृत्व में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस में हुआ। इंग्लैण्ड के जार्जमूर, साइमंस तथा यीट्स इसके प्रचारक हुए। मलार्मे ने कविता को दि लैंग्वेज आफ ए स्टेट आफ क्राइसिस' चरम बिन्दु की अवस्था की भाषा के रूप में परिभाषित किया है। प्रत्येक प्रतीक सत्य के उस स्तर पर उद्घाटन करता है जिसके लिए प्रतीक रहित भाषा अपर्याप्त होती है।[५१] मलार्मे काव्यभाषा को एक विशेष कोटि में रखना चाहते हैं। उनके अनुसार काव्यभाषा में किसी प्रकार का यथार्थ नहीं रहता, कवि को केवल संकेत करना चाहिए, उल्लेख या वर्णन नहीं, कविता मूलत: अन्यात्मक होती है, वह एक रहस्य है जिसके अर्थ की कुंजी पाठक को ढूंढनी है। कविता बुद्धि के द्वारा नहीं समझी जा सकती, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से प्रतीकों की सहायता से काव्यात्मक सहजानुभूति द्वारा समझी जा सकती है। डा० जगदीश गुप्त के अनुसार 'प्रतीकवाद को काव्य क्षेत्र की पुनर्व्याख्या का आन्दोलन माना जाता है। इस प्रयत्न में आभ्यन्तरिकता की ओर झुकाव रखते हुए बौद्धिकता का तिरस्कार बिना किसी सामाजिक उद्देश्य के मनुष्य के सचेतन, रहस्यमय, व्यक्तित्व का स्वीकार और उसकी भावात्मक प्रतिक्रियाओं की जटिलता को नवनिर्मित सांकेतिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति करने के क्रम में 'डिनोटेटिव' से कनोटेटिव' अर्थ की सिद्धि के लिए दुरूहता तक का समर्थन आदि सब कुछ किया था।'[५२] एक बार चित्रकार देगास से कहा कि 'मैं तो भावों से भरा रहता हूं किन्तु जो चाहता हूं उसे कह नहीं पाता, इस पर मलार्मे ने उत्तर

दिया कि 'भावों से कोई कविता नहीं लिखता वरन् शब्दों से लिखता है।' इस प्रकार प्रतीकवादी मलार्मे ने उत्तर दिया प्रिय, देगास। भावों से कोई कविता नहीं लिखता, वरन शब्दों से लिखता है।[५३]

ड०- अभिव्यंजनावाद(एक्सप्रेसनिज्म)

'एक्सप्रेसनिज्म' का प्रथम प्रयोग चित्रकला के सन्दर्भ में सन् १९११ ई० के लगभग जर्मनी में किया गया था। जर्मनी में कला के सन्दर्भ में अभिव्यंजनावाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वालों में विलहेल्म वरिन्जर तथा वासिली काडिन्डन्सकी के नाम लिए जाते हैं। इस आन्दोलन का प्रारम्भ सर्वप्रथम १९०५ में फ्रांस में चित्रकला के क्षेत्र में हुआ। सन् १८९३ ई० के मार्च में इटली के प्रसिद्ध विचारक 'बेनेदेतो' क्रोचे ने सौन्दर्यशास्त्र का जब स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठापन किया तो अभिव्यंजनावाद उसी के नाम से जुड़ गया। क्रोचे सौन्दर्य को अन्तर्वस्तु की अभिव्यक्ति मानता है। क्रोचे की अभिव्यंजना सामान्य अभिव्यंजना से भिन्न है। कुछ लोग कहते हैं कि मेरे मस्तिष्क में बड़े-बड़े विचार उठते हैं पर मैं व्यक्त नहीं कर पाता। क्रोचे का कहना है कि यदि सचमुच उसके पास विचार होते हैं तो वे अवश्य ही नादपूर्ण सुन्दर शब्दों का निर्माण कर लेते हैं। अभिव्यंजना से क्रोचे का तात्पर्य केवल शब्दों द्वारा अभिव्यक्त कर देने से ही नहीं है बल्कि उसके साथ रंग, स्वर, आदि से भी अभिव्यक्त करने से है। क्रोचे के प्रतिपाद्य का मूल आधार है उक्ति, जिसमें वक्रता, ऋजुता या स्वभावोक्ति में कोई भेद नहीं है। कला अथवा अभिव्यंजना अखण्ड होती है। कला मूलत: एक आध्यात्मिक क्रिया है। कला सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया अरूप संवेदन, अभिव्यंजना, आनन्दानुभूति, आन्तरिक अभिव्यंजना अथवा सहजानुभूति का शब्द, ध्वनि, रंग, रेखा आदि

भौतिक व मूर्त रूप आदि विकास चरणों में विभक्त होती है । क्रोचे का कहना है कि हम समझते हैं कि एक मुसकान देख पा रहे हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि उसकी स्पष्ट छाप मन पर पड़ी है परन्तु सम्पूर्ण विशिष्टता पकड़ में नहीं आती । अभिव्यंजना की क्रिया के पूर्व अभिव्यंजना की शैली का कोई अस्तित्व नहीं रहता । भाषा की सृष्टि निरन्तर चलती रहती है । भाषा के द्वारा जो अभिव्यक्ति हो चुकी है उसे दोहराया नहीं जा सकता। नये प्रभाव स्वर और अर्थ में परिवर्तन लाते रहते हैं । सदैव नयी अभिव्यक्तियों को प्रस्तुत करते रहते हैं ।

(च) बिम्बवाद(इमैजिज्म)

इमैज शब्द का प्रयोग प्रतिकृति, बिम्ब, चित्र आदि के लिए होता है । इमैजिज्म या बिम्बवाद आगे चलकर एक साहित्यिक आन्दोलन का नाम पड़ गया । सन् १९०६ से १९१७ के मध्य में इंग्लैण्ड और अमेरिका के कवियों में विशुद्ध बिम्बात्मक कविता की परिचर्चा होती रही ।[५४] सन् १९१२ ई० में एजरापाउण्ड ने टी० ई० ह्यूम की पाँच कविताओं को बिम्बवादी कहकर उसका प्रचार किया । बिम्बवाद की मूल धारणा यह है कि कला अथवा कविता का माध्यम केवल बिम्ब है । काव्यगत अनुभूतियां बिम्बों में ही प्रकट हो सकती है । ~~काव्यगत-अनुभूतियां~~ साधारण व्याकरण सम्मत भाषा कविता का सहज माध्यम नहीं है । ~~बिम्बवादि~~ बिम्बवादियों ने प्रतीकवादियों से प्रेरणा ग्रहण की तथा उनके विचार वृत्त को तोड़कर उससे बाहर निकलते नयी शिल्प दृष्टि देने का प्रयास किया । सन् १९१५,१६,१७ ई० में कुमारी एमीलावेल के नेतृत्व में 'सम इमैजिस्ट पोयट्स' नाम से तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए जिसमें बिम्बवादी आन्दोलन का एक घोषणा-पत्र भी छपा था ।

जिसमें निम्न सिद्धान्त निर्धारित किये गये थे ।[५५] जन-साधारण की भाषा का प्रयोग, सटीक शब्दों का नियोजन, मुक्त छन्द, नवीन लयों की सृष्टि, विषय के चुनाव में पूर्ण स्वातन्त्र्य, एक बिम्ब प्रस्तुत करना, ठोस एवं स्पष्ट कविता की रचना करना प्रमुख उद्देश्य था जिसमें सर्वाधिक ध्यान इन कवियों तथा आलोचकों का भाषा पर था । बिम्बवादी कवियों के अनुसार कविता भाषा की ही एक संरचना है जिसमें बिम्बों को सजाया गया है । वस्तुत: बिम्ब विधान प्रतीक विधान की उलटी दिशा में वही कार्य करता रहा जो प्रतीक विधान कर रहा था । टी० ई० ह्यूम के अनुसार 'कविता में बिम्ब विधान केवल अलंकरण के लिए ही नहीं होता बल्कि वे सहजानुभूतिपरक भाषा के प्राण हैं ।[५६]

(क) अति यथार्थवाद एवं प्रकृतवाद(सुररियलिज्म, नैचुरलिज्म) :

अति यथार्थवाद के सिद्धान्त का विकास यूरोप में सन् १८३० ई० की फ्रांस की राज्य क्रान्ति के बाद हुआ । सन् १८५० से सन् १८८० तक इस आन्दोलन का प्रभाव यूरोपीय साहित्य पर पड़ा । यथार्थवादियों का कहना है कि वस्तु का ज्यों का त्यों चित्रण अर्थात् सत्य का विशुद्ध रूप से उद्घाटन करना आवश्यक है । जो कुछ आंखों से देखा सुना गया है तथा जो बिल्कुल सत्य घटना है उसे बिना घटाये-बढ़ाये यथार्थ के रूप में अभिव्यक्त करना चाहिए । इससे मिलता-जुलता सिद्धान्त प्रकृतवादियों का भी है । उनके अनुसार प्रकृति ही सब कुछ है । प्रकृति में जो कुछ घट रहा है उसका ज्यों का त्यों विवरण देना । सन् १८८० में एमिल जोला ने प्रकृतवाद को प्रतिष्ठित करने का भरपूर प्रयास किया । प्रकृतवादियों का कहना है कि प्रकृति में सभी प्रकार के तत्व विद्यमान हैं । रूप-रंग आदि सभी से वह परिपूर्ण है ।

कलाकार इन्हीं बिखरे हुए तत्वों को संजो कर एक सार्थक रचना का निर्माण करता है। साहित्य के यथार्थ का अर्थ वास्तव में बिम्ब ग्रहण कराना है। वह यथार्थ मानस में ग्रहण किया जानेवाला यथार्थ का रूप है। विशुद्ध यथार्थवादी चित्रण के मार्ग में भाषा भी एक बाधा है। हमारे अनुभवों और भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा के लिए संभव नहीं है क्योंकि ऐसी बहुत सी बाते हैं जिसे कवि या चित्रकार चित्रित नहीं कर सकता। जैसी किसी सुन्दरी गायिका की आवाज या उसके केशों की सुगंध। सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करें तो अतियथार्थवाद भाषा को महत्व नहीं देता परन्तु व्यवहार में अति-यथार्थवादी काव्य भाषा के एक विलक्षण ढांचे के रूप में सामने आता है।

## ज- नयी आलोचना(न्युक्रिटिसिज्म) :

'दि न्यु क्रिटिसिज्म' (नयी आलोचना) के प्रकाशन से नयी आलोचना का वास्तविक आरम्भ माना जाता है। सन् १९४१ में जान-क्रोरेन्सम ने इसे प्रकाशित कराया। वैसे न्युक्रिटिसिज्म' का प्रथम प्रयोग सन् १९१० में कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रो० डा० जोएल स्पिनगार्न ने किया था। नयी आलोचना में क्रान्तिकारी योगदान का श्रेय रिचर्ड्स के 'प्रिंसिपल आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म मीनिंग एण्ड मीनिंग', एलैन टैट के निबंध टैंशन इन पोयट्री, तथा एम्पसन की पुस्तक 'सैवेन टाइप्स आफ' इम्बिगुइटी तथा जान क्रो रैन्सम की पुस्तक 'दि न्यु क्रिटिसिज्म' का है। अमेरिका के कुछ आलोचकों ने इस पद्धति में पर्याप्त संशोधन भी किया है। उन आलोचकों में रेनवैलेक और आस्टिनवारेन' प्रमुख हैं। नये आलोचकों का प्रमुख ध्येय यह है कि नयी आलोचना कविता की आत्मा के अन्वेषण में प्रवृत्त न होकर उसके

दृश्यमान रूप में ही लीन होती है। नयी आलोचना को केन्द्र में रख एक नयी पीढ़ी अमेरिका के शिकागो स्कूल में कार्य कर रही थी जिसमें टी० के० ह्विपल, एडमन्ड विल्सन, ब्रानवाहक मुख्य थे। इन आलोचकों ने पहले से चली आती हुई वादग्रस्तता का डटकर विरोध किया। इन आलोचकों के अनुसार जिसके अन्त में वाद शब्द जुड़ा हो वह कबूतर के दरबों की भांति है। आचार्य शुक्ल ने राबर्ट ग्रेव्ज का मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'योरोप में इधर पचास वर्ष के भीतर 'रहस्यवाद, कलावाद, व्यक्तिवाद इत्यादि जो अनेक वाद चले थे, वे अब वहां मरे हुए आन्दोलन समझे जाते हैं। इन नाना वादों से ऊब कर लोग अब फिर साफ हवा में आना चाहते हैं। किसी कविता के सम्बंध में किसी वाद का नाम लेना अब फैशन के खिलाफ माना जाने लगा है। अब कोई वादी समझे जाने में कवि अपना नाम नहीं समझते।'[57] नयी आलोचना से तात्पर्य उस प्रकार की आलोचना से है जिसमें उससे पूर्व चली आती पद्धतियों के प्रति तिरस्कार का भाव है। नयी आलोचना सभी प्रकार की आलोचना प्रणालियों से सर्वथा मुक्त रखते हुए मात्र रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा के माध्यम से रचनाकार की अनुभूति की गहराई की सीमा को नापने का प्रयास करती है।[58]

नयी आलोचना के विकास में इलियट और रिचर्ड्स का भी पर्याप्त योगदान रहा है। इलियट ने परम्परा प्राप्त आलोचना पद्धतियों का डटकर विरोध किया तथा नयी-नयी मान्यताएं भी प्रदान कीं। इलियट का भाषा की व्यवस्था पर विशेष ध्यान था। उनके अनुसार रचना उत्कृष्ट तभी मानी जायेगी जब भाषा प्रौढ़ता पर पहुंच जायेगी। भाषा को प्रौढ़ता पर पहुंचाने के लिए इलियट ने प्राचीन और नवीन शब्दों के समुचित संयोजन, सटीक, अग्राम्य, सुस्पष्ट परिमार्जित, तथा आडम्बर विहीन नृत्य करते हुए शब्दों के

~~समुचित-संयोजन, सटीक,~~
के प्रयोग पर विशेष बल दिया है। भाषा को काव्य सिद्धान्त के निकष के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।[59] रिचर्ड्स एक सफल मनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ अर्थ विज्ञान के भी वेत्ता थे। जीवन और साहित्य के प्रति मनोवैज्ञानिक विचार दृष्टि अपना कर साहित्य के मूल्य को सामने रखना उनका प्रमुख ध्येय था। रिचर्ड्स ने परिस्थितियों के बदलाव के साथ-साथ नैतिक मूल्यों के बदलाव को भी स्वीकार किया है। उन्होंने कविता को विज्ञान तथा मनोविज्ञान के करीब लाकर भाषा के वैज्ञानिक तथा साहित्यिक प्रयोग किये[60] उनके अनुसार कविता का सम्बंध जीवन से है इसी लिए जीवन प्रद सामग्री के साथ जीवनदायिनी शब्दावली का भी प्रयोग होना चाहिए। रिचर्ड्स ने अपनी पूर्वकालीन समीक्षा पद्धतियों को अनुमान, ताड़ना, चमत्कारवादी कल्पना, अस्पष्ट वक्तव्य, अंध-विश्वास, अर्थगर्भित सन्देश, दिशाहीन रूपरेखाएं बताया है। रिचर्ड्स ने एलेनटेट की ऐतिहासिक आलोचना को खण्डित करके नयी आलोचना को अधिक जागरूक बनाया। आगे चलकर भाषा के विशुद्ध साहित्यिक तत्वों को पकड़ने का भी प्रयास किया। जिसके अन्तर्गत लय, छंद, शैली तत्व, बिम्ब रूपक, प्रतीक, मिथ-मिथक पुराकथा समाहित हैं। जानक्रो रैंसम के शिष्य एलेनटेट और क्लिएन्थ ब्रुक्स ने नयी आलोचना की पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी व्यक्त की। कविता की भाषा को विरोधाभास की भाषा कहा। एफ० आर० लीविस ने यह स्वीकार किया कि कविता शब्द पहले है भाषा बाद में।[61] एलेनटेट मानता है कि काव्य का आधार भाव या विचार नहीं भाषा है। कवि का दर्शन कुछ भी हो उसे उसकी भाषा के द्वारा ही पहचाना जाता है।[62] एलेनटेट ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'टेंशन इन पोयट्री' में शब्द प्रयोग का अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दो रूप स्वीकार किया है जो एक प्रकार से प्रस्तुत

और अप्रस्तुत की कोटि के हैं । अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत प्रतीक, अलंकार लक्षणा तथा व्यंजना की जा सकती है तथा प्रस्तुत विधान के अन्तर्गत बिम्ब एवं अभिधा की । नये आलोचकों की सबसे बड़ी समस्या उसके आलोचना की भाषा है । इनका कहना है कि जिस भाव या पदार्थ के लिए हम इतने दिनों से शब्द प्रयुक्त करते आ रहे हैं उसके लिए नये शब्द गढ़े जायं । राबर्टपैन वारेन ने व्यंग्य और विरोधाभास को नयी आलोचना के कवियों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध किया है ।[६३] ब्रुक्स की भी यही मान्यता है उसके अनुसार कविता जिस भाषा माध्यम को अपनाती है उसकी सृजनशीलता विसंगति (पैराडाक्स) और व्यंग्य(आइरनी) में निहित है । क्लीएन्थ ब्रुक्स ने वर्ड्सवर्थ के सानेट का परीक्षण करते हुए विसंगति की पुष्टि की है । उनका कहना है कि विसंगति कविता की भाषा से स्वभावत: उद्भूत होती है, यह वह भाषा होती है जिसमें अभिधेयार्थ एवं संकेतार्थ दोनों का महत्व पूर्ण संयोग होता है । ब्रुक्स का कहना है कि जिस कविता में व्यंग्य न हो वह कविता ही नहीं है ।[६४] व्यंग्य और विसंगति की महत्ता का प्रतिपादन `पोयटिक स्ट्रक्चर , की दृष्टि से डेविड-डेचिज ने भी किया है ।[६५] विलियम एम्पसन ने भाषिक सर्जना का मूल (एम्बिगुइटी ) (अनेकार्थता) को माना है । `सेवेन टाइप्स आफ एम्बिगुइटी` नामक पुस्तक में `एम्बिगुइटी` का मूल शब्दार्थ है द्विअर्थता और फिर इसका विस्तार संदिग्धार्थता, और अनेकार्थता में भी हो जाता है । इस प्रकार एम्पसन शब्दों के श्लिष्ट या अनेकार्थ प्रयोग को कविता का मूल तत्व मानता है ।[६६] विमसाट ने इसकी कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि एम्पसन का यह एम्बिगुइटी नामक काव्यतत्व कभी सिर्फ कौतूहल तक सीमित रह जाता है और वह शुद्ध रूप से कभी कृति को केन्द्र में नहीं रख पाता ।[६७] डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की मान्यता इस अर्थ में है कि `काव्य भाषा की प्रतीक पद्धति, प्रत्यय(कन्सैप्ट) और अभिव्यक्ति

के सम्बंध में को लचीला बनाने के प्रयत्न में अर्थ को विकल्प रूप में ग्रहण करती है। विकल्प की स्थिति में रहने के कारण काव्यभाषा में संदिग्धार्थता और अनेकार्थता रहती है जो काव्यात्मकता को जन्म देती है।[६८]

इस प्रकार नयी आलोचना के कवियों एवं आलोचकों ने भाषा के शाश्वत प्रतिमान को आधार बनाकर नये लिखे जा रहे साहित्य को परखने का प्रयास किया। भाषा के अन्तर्गत रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा और मानसिक भाषा सम्बंधी तनाव, अप्रस्तुत योजना, आलंकारिक वर्ण्य वैचित्र्य, व्यंग्य, वक्रोक्ति, बिम्ब, प्रतीक मिथक आदि ग्रहण किया जो मूलतः भाषा के ही उत्स हैं। इस प्रकार नयी आलोचना का पूरा प्रभाव नयी कविता पर देखा जा सकता है।

--

## सन्दर्भ-सूची


१- आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।।
मारुतस्तूरसि चरनमन्द्रं जनयति स्वरं------वर्णं जनयते तेषां विभागः
पंचधा स्मृतः । - पाणिनि : अष्टाध्यायी, पाणिनीय शिक्षा-
६,६,१०

२- अमरकोष- १।६।१

३- मनुस्मृति, २।१५६

४- दण्डी, काव्यादर्श- १:४,१:६, व्याख्याकार धर्मेन्द्रकुमार गुप्त,
मेहरचन्द, लछमनदास, दिल्ली

५- वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे । भर्तृहरि वाक्य प्रदीप-१।१०,१।२१

६- वही- ८।४।६८

७- यः संयोग वियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते ।
स स्फोटः शब्दजाः शब्दो ध्वनयोऽन्यैरुदाहृताः ।।
भर्तृहरि : वाक्यपदीप १।१०३

८- ग्रहण ग्राह्ययोः सिद्धा योग्यता नियतो यथा ।
व्यंग्य व्यंजक भावेन तथैव स्फोट नादयोः ।।
वही १।६८

९- डा० रविशंकर नागर, व्यंजना और ध्वनिसिद्धान्त शीर्षक निबंध-
पृ० ३७ `ध्वनि सिद्धान्त` सं० डा० राममूर्ति शर्मा

१०- बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० १३

११- किशोरीदास वाजपेयी, ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० ७

१२- डा० सत्यदेव चौधरी, शैली विज्ञान और भारतीय काव्यशास्त्र, पृ०२३

१३- अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततें र्थं भावेन प्रक्रिया जगतो यथा ।।
वाक्य पदीय-१।१

१४- वही- २।३१

१५- वही- २।३२

१६- व्यंजना और ध्वनि सिद्धान्त' शीर्षक निबंध, ध्वनि सिद्धान्त' पृ० ३६, सं० डा० राममूर्ति त्रिपाठी ।

१७- व्यंजना और ध्वनि सिद्धान्त शीर्षक निबंध,
ध्वनि सिद्धान्त, सं० राममूर्ति त्रिपाठी, पृ० ३८

१८- वामन : काव्यालंकार, सूत्रवृत्ति १: १:२,पृ० ५
आचार्य वामन और रीति सिद्धान्त, सं० डा० नगेन्द्र

१९- भामह काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद, पृ० १८, बिहार राष्ट्रभाषा प्रकाशन ।

२०- वही- पृ० १५४, १४०(वक्र वाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधक: )

२१- वक्रत्वं चालंकार इति, अवक्र्यो: शब्दार्थयो: वचन मात्रत्वात्'
रत्नेश्वर, भोजकृत सरस्वती कंठाभरण की टीका ।

२२- सैवोक्ति भंगी भेदेनानेकालंकार भावं भजते ।
चित्रमीमांसा, सुधा टीका, पृ० ४१-४२

२३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-१ पृ० १८१

२४- डा० हरदयाल, आधुनिक हिंदी कविता का अभिव्यंजना शिल्प,पृ०७

२५- कार्लबेक्शन एण्ड आर्थरगंज, ए रीडर्सगाइड, टु लिटररी टर्म्स लंदन, १९६१, पृ० १८३

२६- पुटेनहम,उद्धृत जासेफ टी० शिप्ले, डिक्शनरी आव वर्ल्ड,लिटररी टर्म्स, लंदन- १९७०,पृ० १२०

२७- विशिष्ट पद रचना रीति:, काव्यालंकार सूत्र वृत्ति,१:१,२,७,पृ०१६

२८- वचन विन्यास क्रमोरीति:, राजशेखर,काव्यमीमांसा

२९- पद संघटना रीति:, सा०द० ९:१,विमला टीका, पृ० २७०

३०- डा० नगेन्द्र ठाकुर, छायावादी काव्यभाषा का विवेचनात्मक अनुशीलन, पृ० २१

३१-

३१- वही- पृ० २५

३२- अस्त्यैको गिरांमार्ग: सूक्ष्म भेद: परस्परम्, काव्यादर्श-१: ४० पृ० ३३

३३- प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, बंबई-१९५९, पृ०१३८

३४- क्लियेन्थ ब्रुक्स और राबर्टपेनवारेन, अण्डरस्टैंडिंग पोयट्री न्यूयार्क-१९५० पृ० ६०५

३५- वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति: ४:३,८ पृ० २३५

३६- सुप्तिङ् वचन सम्बन्धैस्तथा कारकशक्तिभि: ।
कृतद्धित समासैश्च द्योत्योऽलक्ष्य क्रम: क्वचित् ।।
ध्वन्यालोक-३: १६

३७- आई० ए० रिचर्ड्स, द फिलासफी आफ रहिटोरिक, पृ०७३

३८- डा० बच्चन सिंह, आलोचक और आलोचना, पृ० ७६-७७

३९- वक्रोक्ति जीवितम्- १:७ सं० डा० कृष्णामूर्ति , पृ० ७

४०- यद्वक्रं वच: शास्त्रे लोके च वच एव तत् ।
वक्रं यदर्थवादादौ तस्य काव्यमिति स्मृति : ।।
नगेन्द्र उद्धृत, हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् की भूमिका, पृ० ३४

४१- पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे, गुणे लंकरणे रसे ।
क्रियायां, कारके, लिंगे, वचने च विशेषणे ।।
काव्यस्यांगेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम् ।
क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा-७-१०

४२- सावित्री सिन्हा उद्धृत न्यालो, पृ०-४०
पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा, दिल्ली विश्वविद्यालय-१९६६
पृ० ६१

४३- द्रष्टव्य-सैमुअल जान्सन, पाश्चात्य समीक्षा दर्शन-वाराणसी-१९६९
पृ० २०० जगदीशचन्द्र जैन ।

४४- पाश्चात्य काव्य शास्त्र, डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा उद्धृत `प्रिफेस`-११२
४५- द्रष्टव्य- पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा, पृ०१५५, वर्ड्सवर्थ के `प्रिफेस` से उद्धृत ।
४६- वाल्टर रैले, `स्टाइल` १६२६, पृ० ३७ लंदन ।
४७- आस्कर वाइल्ड `दि प्रोफंडिस, लंदन, १६२७, पृ० ८८
४८- आस्कर वाइल्ड, दि प्रिफ्रेस, दि पिक्चर आव डोरियनग्रे, कम्पलीट वर्क्स आव आस्करवाइल्ड, लंदन-१५६६, पृ० १७
४६- ए०सी० ब्रेडले, आक्सफोर्ड लेक्चर्स आन पोयट्री, लंदन-१६६२, पृ० १६
५०- वाल्टर पैटर, थ्री एस्सेज फ्राम एप्रिसिएशंस लंदन । १६५७, पृ०-२५
५१- एव्री साइम्बल ओपेन्स अप ए लेवल आफ रियलिटी, फार व्हिच नान सिम्बालिक स्पीकिंग इज रनैडीक्वैट । `क्वाटेड इविड, पे०११८
५२- डा० जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएं, पृ० ५२
५३- मलार्मे उद्धृत आर्थर साइमंस, दि सिम्बोलिज्म मूवमेंट इन लिटरेचर, लंदन-१६५८, पृ० ६३
५४- जगदीश गुप्त, नयी कविता स्वरूप और समस्याएं, पृ० ५३
५५- क्लियंथ ब्रुक्स और रावर्टपेनवारेन, अन्डर स्टैंडिंग पोयट्री, न्युयार्क-१६५०, पृ० ६८६
५६- टी० ई० ह्यूम स्पेकुलेशंस, पृ० १३४-१३५
५७- ए सर्वे आफ माडर्निस्ट पोयट्री, वाई लौरा रिडिंग एण्ड रावर्टग्रेव्ज, उद्धृत रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, पृ० १६५
५८- ओमप्रकाश अवस्थी, नयी कविता के बाद, पृ० १०२
५६- एन इजी कामर्स आफ द ओल्ड एण्ड निउ
द कामन वर्ड इक्जैक्ट विदाउट वलगरिटी
द फार्मल वर्ड प्रिसाइज बट नाट पिडान्टिक
द कम्पलीट कन्सर्ट डांसिंग टुगेदर ।
`टी०सी० इलियट फोर क्वार्टेट्स लिटिल गिडिन्ग, पृ० ४३

६०- ए स्टेटमेन्ट मे बी यूज्ड फार द सेक आफ द रिफ्रेन्स ट्रयु आर फाल्स ह्विच इट काजेज, दिस इज द साइन्सटिफिक यूज आफ लेंग्वेज, वट इट मे आल्सो वी यूज्ड फार द सेक आफ द इफैक्ट्स इन इमोशन एण्ड एट्टीट्यूड प्रोड्यूज्ड बाइ द रिफ्रेन्स इट अकेजन्स, दिस इज द इमोटिव यूज आफ लैंग्वेज।

प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पेज-२६७

६१- एफ० आर० लीविस, न्यु बियरिंग्स इन इंग्लिस पोयट्री (पेंग्विन बुक्स-१९६३, पेज-२

६२- एलेन टेट : टेंशन इन द पोयट्री- उद्धृत डा० नगेन्द्र, नयी समीक्षा नये सन्दर्भ, दिल्ली-१९७०, पृ० २०

६३- राबर्टपेन वारेन, प्योर एण्ड इम्प्योर पोयट्री लेक्चर, पृ० १४२

६४- द्रष्टव्य-रामसेवक सिंह, टी० एस० इलियट और नयी आलोचना, लेख-आलोचना अक्तूबर-दिसम्बर १९६८, पृ० ५०

६५- द्रष्टव्य- क्रिटिकल अप्रोच टू लिट्रेचर, पृ० १६१

६६- द्रष्टव्य- सेवेन टाइप्स आफ एम्बिगुइटी, पृ० १ से ८

६७- द्रष्टव्य- लिटरेरी क्रिटिसिज्म: ए शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६३९

६८- डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, शैली विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका, पृ० ३९

---